सामाजिक न्याय और आत्मबल

मंजुला बोर्दिया

''रहने को घर नहीं, सारा जहां हमारा'', जैसी विडंबनात्मक स्थिति आज स्वतंत्र भारत में नारी की है। कहने को वह लक्ष्मी है पर उसकी मुट्ठी खाली है, कहने को वह सरस्वती है पर उसको किसी भी प्रकार के निर्णय लेने का अधिकार नहीं है, कहने को वह दुर्गा है पर हर रोज उसका बलात्कार होता है। इस दयनीय स्थिति के बावजूद हमारी संवैधानिक व्यवस्था यह दावा करती है कि नारी पुरुषों के समकक्ष है। सैद्धांतिक रूप में हालांकि यह दावा गलत भी नहीं है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत के शीर्ष नेताओं ने अपने संविधान में जब भारतीय नागरिकों का भाग्य लिखा था, तब नारी के प्रति उनका दृष्टिकोण स्वस्थ व उदार था। उन्होंने उनके प्रति पूरा न्याय किया था। उन्हें जीवन के हर क्षेत्र में पुरुषों के समान रखा गया, कहीं कोई कमी नज़र नहीं आती थी। संविधान में दिए गए अपने अधिकारों के प्रति वे संतुष्ट थीं। कदाचित् उस समय की उन सम्भ्रांत महिला नेताओं ने यह कल्पना भी नहीं की थी कि अगले ही दिन उनका सपना टूट जाएगा और उनके ये संवैधानिक अधिकार मात्र सैद्धांतिक दस्तावेज बनकर अलमारियों में सज जाएंगे। अब वे समझ गई हैं कि ये समाधिकार मात्र मृगतृष्णा है। यह भी पितृसत्तात्मकता के ठेकेदारों की एक अद्भुत चाल है जिसकी थाह वह नहीं पा सकती। स्त्रियों के मूल अधिकार और उनके लिए दिए गए न्यायिक संरक्षण के बावजूद भी स्त्रियों की स्थिति अभी भी उतनी ही दयनीय है जितनी कि पहले थी। रोजमर्रा जीवन में प्रतिदिन

टूटते अधिकारों का अहसास कांच के नुकीले टुकड़ों की तरह उसके व्यक्तित्व में चुभ-चुभकर उन्हें इस वास्तविकता का अहसास कराते रहते हैं कि न्याय और अधिकार तो मात्र पुरुषों के, पुरुषों के द्वारा, पुरुषों के लिए रचे गए हैं। उस व्यवस्था में स्त्रियों का स्थान मात्र दिखावा है।

संविधान के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई इस कटु वास्तविकता का एहसास होने के बाद शिक्षित मध्यवर्ग की महिलाओं में अपनी असहाय, दलित व पीड़ित महिलाओं को कुछ करने का एहसास जागा और उसके फलस्वरूप उन्होंने इन्हें समानाधिकारों के प्रति जागरूक कराने के लिए प्रयास शुरू किए। 60 के दशक में पाश्चात्य देशों में भी नारीवादी आंदोलनों ने जोर पकड़ना प्रारंभ किया था। इसका प्रभाव भारत में भी पड़ा और पिछले 30-35 वर्षों में स्वयंसेवी संस्थाओं ने अपने क्षेत्र में अपने-अपने तरीकों से नारी प्रगति के क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य किए। उन्हें आर्थिक रूप से स्वावलंबी बनाने की योजनाएं बनाई। उन्हें अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करने का प्रयास किया गया, पितृसत्तात्मकता के दूषित प्रभाव से स्त्री-पुरुष दोनों को उबारने का प्रयत्न किया।

किन्तु पांच दशकों से प्राप्त संवैधानिक अधिकारों एवं स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा किए गए अथक प्रयासों के बावजूद भी महिलाओं की स्थिति में कितना परिवर्तन आया है यह सुधी पाठकों व लेखकों से छिपा नहीं है। महिला विकास की इस प्रक्रिया में हमसे कहीं न कहीं कोई चूक अवश्य रह गई है जिसके कारण हम मजबूत इरादों के होते हुए भी आशाप्रद प्रगति नहीं कर पाए।

पिछले कुछ दशकों से जब से नारी प्रगति की दिशा में कार्य प्रारंभ किए गए, तब भारतीय नारी व उसकी स्थिति का एक महत्वपूर्ण पहलू हम नज़रअंदाज करते आए हैं। सही अर्थ में अगर उस पर दृष्टिपात करें तो पाएंगे कि वास्तव में वही महिला प्रगति का आधारबिन्दु है। युगों से हमारे देश की विपन्न महिलाएं सभी प्रकार की दारूण परिस्थितियों का बिना किसी बाह्य व सरकारी मदद के अपना, अपने बच्चों व परिवार का भरण-पोषण करती आ रही है, अपने परिवार का अस्तित्व बनाए रखने के लिए वह किसी से भी किसी भी प्रकार की अपेक्षा नहीं रखती है। हमारे परंपरागत संस्कारों ने भारतीय महिलाओं को अटूट आध्यात्मिक शक्ति से परिपूर्ण किया हुआ है जिसके द्वारा उनमें अदम्य-आंतरिक शक्ति, विश्वास व सहनशक्ति का संचार होता रहता है। अपनी इसी आंतरिक शक्ति के बल पर वे दुर्दम्य परिस्थितियों को पार करने का हौसला रखती हैं।

मेरे इस कथन का यह आशय कदापि नहीं है कि हम अपनी असहाय महिलाओं को केवल उनकी आंतरिक शक्ति के भरोसे छोड़ दें। यहां मेरा तात्पर्य यह है कि हमें इस दिशा में विचार करना चाहिए कि हम महिलाओं की इस नैसर्गिक शक्ति, जो युगों से पितृसत्तात्मक व्यवस्था के बोझ से सुषुप्त पड़ी है, उसे जागृत करने का प्रयत्न करें ताकि उसमें आत्मविश्वास एवं आत्मसम्मान का संचार हो। कल्पना कीजिए उस स्वाभिमानी स्त्री की, जो आंतरिक शक्ति से परिपूर्ण है व अपने मौलिक अधिकारों के प्रति जागरूक। ऐसी प्रबुद्ध व्यक्तित्व वाली नारी को अपने अधिकारों के लिए किसी की ओर मुंह नहीं जोहना पड़ेगा। वे स्वयं अर्जित करने की क्षमता रखेगी। यहां स्वामी विवेकानंद के वे विचार कितने प्रासंगिक हैं जब उन्होंने महिला शिक्षा में कार्यरत अधिक उत्साही लोगों को यह कहकर सचेत किया था कि उनके (महिला) बारे में निर्णय लेने वाले तुम कौन होते हो। तुम्हारा कार्य है केवल उन्हें शिक्षित कर स्वावलंबी बना देना। फिर अपना निर्णय वे स्वयं कर लेगी।

महिला विकास के प्रति समर्पित लोगों से मेरा यह विनम्र सुझाव है कि हम इस दिशा में भी थोड़ा विचार करें। महिलाओं की अनगढ़, अपरिष्कृत किंतु प्रचुर आध्यात्मिक क्षमता को विकसित करने का प्रयास करें, उन्हें आत्मा के वास्तविक स्वरूप से अवगत कराएं। भारत की आध्यात्मिक एवं पौराणिक शिक्षाओं के द्वारा इस वास्तविकता से अवगत कराएं कि वास्तव में आत्मा का कोई लिंग नहीं होता है। आंतरिक रूप से स्त्री व पुरुष समान हैं। हमारे वेदों में स्पष्ट निर्देश है कि आध्यात्मिक रूप में स्त्री व पुरुष समान हैं। दोनों शुद्ध चैतन्य स्वरूप है। स्त्री व पुरुष में जो अंतर दृष्टिगत होता है वह केवल बाह्य शारीरिक अंतर है और यह बाह्य शारीरिक अंतर केवल माया रूप है वास्तविक नहीं। 'श्वेतश्वेतर उपनिषद्' में कहा गया है कि आत्मा न नर है, न मादा है, न अकर्मक है। वह शुद्ध 'सच्चिदानंद स्वरूप है। केवल शरीर धारण करने से यह अंतर आता है। स्वामी विवेकानंद ने भी महिलाओं को निर्देश देते हुए कहा था कि उन्हें अपनी आंतरिक शक्ति हासिल करनी चाहिए।



आत्मानुभूति होने के बाद आत्मा के स्तर पर लिंगात्मक भेद समाप्त हो जाते हैं।

संवैधानिक अधिकारों के प्रति जागरूकता अगर इस आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य में समझाई जाए तो नारियों में अदम्य आंतरिक शक्ति, आत्मविश्वास व दृढ़ संकल्प उत्पन्न हो सकता है। उस अर्जित की गई क्षमता से स्वयं को सशक्त महसूस करेंगी। यह उनकी अपनी अर्जित की हुई शक्ति होगी जिसके द्वारा वे अपना विकास स्वयं करेंगी। अपने द्वारा अर्जित की गई स्वाधीनता ही वास्तविक स्वतंत्रता होती है।

'ब्रहदयनायक उपनिषद्' में याज्ञवल्क मैत्रेयी से कहते हैं कि आत्मानुभव ही आध्यात्मिक जीवन की उच्चतम अनुभूति है—आत्मसाक्षात्कार उच्चतम ज्ञान है। हम विचार करें कि क्या कोई भी बाह्य अधिकार स्त्री को इतना आत्मविश्वास प्रदान कर सकता है जितना उसका यह बोध कि स्वचेतना उसका अपना गुण है और आत्मिक रूप से उसमें व पुरुष में कोई अंतर नहीं है। यह आत्मिक बोध उसमें ऐसा आत्मविश्वास, शक्ति व दृढ़ता प्रदान करेगा कि उसे अपने सांसारिक अभ्युदय व आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिए किसी बाह्य शक्ति व कानून की आवश्यकता नहीं होगी। उसे अपने इस तत्व की पहचान हो जाएगी। अपनी आंतरिक क्षमता के आधार पर हर सांसारिक व लैंगिक असमानता से ऊपर उठकर सही रूप में परतंत्रता से मुक्त हो जाएगी। अतः उसे वास्तविक स्वतंत्रता आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा ही मिल सकती है। किंतु ऐसी वस्तुस्थिति प्राप्त करने के लिए आवश्यकता है चरित्र निष्ठ आत्मबल एवं वैराग्यवृत्ति वाली आदर्श महिला जो उसे इस दिशा में दिशानिर्देश दे सके।

किंतु यह आसान कार्य नहीं है। जैसा 'कठोउपनिषद्' में कहा है, ''यह रास्ता दुर्गम व संकीर्ण है, छुरी की धार पर चलने के समान है।'' अगर वास्तव में नारी अपनी आध्यात्मिक जागृति चाहती है तो उसे हमारे पुराणों से प्रेरणा मिल सकती है। हमारे पुराणों में सीता, द्रौपदी व सावित्री जैसी असंख्य स्त्रियों के उदाहरण हैं जिन्होंने स्वयं के अदम्य विश्वास व क्षमता के द्वारा अलंघनीय बाधाओं को पार कर अपने सम्मान व गरिमा की रक्षा की है। पांच-पांच लौहपुरुष दुर्योधन जैसे दानव से द्रौपदी के सम्मान को न बचा पाए, हमारे सब नीतिज्ञ व धर्मज्ञ मौन बैठे रहे। द्रौपदी को उसकी आंतरिक शक्ति ही उस दुर्निवार अवस्था से बचा पाए। श्रीकृष्ण तो उसकी आंतरिक आध्यात्मिक क्षमता के प्रतीक थे। वह घटना (चीरहरण) न केवल द्रौपदी के लिए वरन् संपूर्ण नारी जाति के लिए सुंदर आदर्श प्रस्तुत करता है कि उसे उसकी आंतरिक शक्ति के अलावा और कोई नहीं बचा सकता और उसकी यही आंतरिक शक्ति दुर्गा है, चंडी है, महाकाली है जो उसकी रक्षा करती है। स्वर्गारोहण के समय उसे शौर्यवान पांचों पति उसे निढाल अकेला छोड़ स्वर्ग चले गए। अच्छा ही हुआ, उसे अपने सांसारिक आसक्तियों से अंत में मुक्ति मिली। आखिर, अपनी आत्मा का उद्धार तो उसे स्वयं ही करना था। यह बहुत बड़ी शिक्षा है नारी जाति के लिए। अपना कल्याण उसे स्वयं ही अपनी आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा करना है। अपने विवेक, सामर्थ्य एवं आध्यात्मिक ज्ञान के द्वारा ही द्रौपदी श्रीकृष्ण की सखी बनने का सौभाग्य प्राप्त कर सकी। सखी बनना यानि कि श्रीकृष्ण के समकक्ष होना।

नारी सामर्थ्य व संकल्प का अपूर्व उदाहरण है सावित्री—जो अपनी दृढ़ इच्छा शक्ति से अपने पति को यमराज के हाथों से वापस ले आई। अपने आत्मसम्मान की रक्षा के लिए सीता ने पुनः राम की बगल में बैठने के बजाए धरती मां की गोद का आश्रय अधिक उचित माना है।

क्या ये सब उदाहरण पर्याप्त नहीं हैं—यह सब सिद्ध करने के लिए कि अगर वास्तव में नारी को कोई उसका वास्तविक स्थान दिला सकता है तो वह है उसकी 'आंतरिक शक्ति'। यह आंतरिक शक्ति आध्यात्मिक क्षमता से ही प्राप्त हो सकती है।

आज आवश्यकता है असहाय नारी में पुनः इस आंतरिक शक्ति का संचार करने की। नारी सशक्तिकरण की दिशा में यही वास्तविक कदम होगा।